सम्प्रदाय निरपेक्ष मीरा की भक्ति

डॉ. रवीन्द्र नाथ मिश्र
प्रोफेसर एवं हिंदी विभागाध्यक्ष
गोवा विश्वविद्यालय, गोवा-203406

हमारे वेद, उपनिषद, पुराण, रामायण, महाभारत, गीता, श्रीमद्भगवत, संस्कृत ग्रन्थ आदि भारतीय धर्म-चिंतन एवं साहित्य की गंगोत्री हैं जहाँ से भक्ति और साहित्य की सरिता कई धाराओं एवं उपधाराओं में प्रवाहित हुई जिसमें कृष्ण-भक्ति धारा का अपना विशिष्ट स्थान है । कृष्ण को पूर्णावतार माना गया । वस्तुतः उस समय ऐसे अवतार की आवश्यकता महसूस की गई जो कि पराक्रमी, रूपवान, कर्तव्यपरायण, क्रान्तदर्शी, जननेता और ललित कलाओं में पारंगत हो। वह कर्मयोगी, पूर्णज्ञानी और सच्चिदानंद स्वरूप हो । कृष्ण का इन्हीं रूपों में अवतार हुआ जिसे कि दार्शनिकों, कवियों, संगीतकारों और चित्रकारों ने अपनी कला का आलंबन बनाया । उनकी भक्ति के नाना, रूपों का प्रचार-प्रसार विभिन्न युगों में हुआ जिसमें भारतीय जनमानस ने विविध भावों और विचारों के अनुसार गोता भी लगाया और आज भी लगा रहे हैं ।

भक्ति आंदोलन की कड़ी में विभिन्न आचार्यों, संतों, कवियों आदि ने परंपरागत भक्ति को समयानुकूल युगीन भावों और बोधों से जोड़कर उसे नवीन अर्थवत्ता प्रदान की । भक्ति आंदोलन एक धार्मिक आंदोलन था जो कि दक्षिण से उत्तर भारत में आया और संपूर्ण भारतीय जनमानस को प्रभावित किया । यह सामाजिक, सांस्कृतिक और धार्मिक एकता का सबसे बड़ा आंदोलन था । भक्ति के जिन चार संप्रदायों का उदय दक्षिण में हुआ उनमें ग्यारहवीं शताब्दी में आचार्य निम्बार्क (जिनका असली नाम भास्कराचार्य था) ने द्वैताद्वैतवादी दर्शन के आधार पर कृष्ण को उपास्यदेव मानकर सनक संप्रदाय चलाया । वल्लभाचार्य ने 16वीं शताब्दी में विष्णु स्वामी के रुद्र संप्रदाय का पुनरुद्धार किया और शुद्धाद्वैतवादी सिद्धान्त प्रतिपादित कर पुष्टिमार्ग चलाया जिसमें श्रीकृष्ण-भक्ति की प्रधानता थी । वल्लभ संप्रदाय के अनुयायियों ने मीरा को 'पुष्टिमार्ग' में लाने के लिए अनेक प्रयत्न किए, किंतु वे नहीं आयीं । उन्होंने कृष्ण भक्ति का अपना स्वतंत्र मार्ग चुना । इसके अतिरिक्त माध्व संप्रदाय से संबद्ध गौड़ीय चैतन्य संप्रदाय में भी श्री कृष्ण को परमतत्व माना गया । इस प्रकार उनके इस रूप का गुणगान तेरहवीं शताब्दी में जयदेव ने संस्कृत में (गीत गोविंद), मैथिली में विद्यापति ने, गुजराती में नरसी मेहता ने, बांगला में चण्डीदास ने और ब्रजभाषा में सूरदास ने किया । भक्ति के स्मरण, कीर्तन, पादसेवन, अर्चन, आत्मनिवेदन, श्रवण, दास्य, सख्य आदि रूपों करो अपनाते हुए मध्यकाल के भक्त कवियों ने उसे अपनी बनावट के अनुसार प्रस्तुत किया । यह बात दिव्य प्रबन्धम से कबीर, सूर, तुलसी और मीरा तक देखी जा सकती है । । भक्तिकाल के अधिकांश कवि किसी न किसी संप्रदाय से जुड़े थे लेकिन मीरा ने अपनी अलग राह चुनी किंतु उनसे किसी न किसी रूप में जुड़ी रहीं ।

मीरा की भक्ति का स्वरूप देवर्षि नारद द्वारा भागवत में वर्णित प्रेम रूपा और अमृत स्वरूपा है । लेकिन उसे स्वानुभूति के आधार पर आंखिन की देखी के माध्यम से व्यक्त किया जिसमें हमें उनका जीवन-

संघर्ष, पारिवारिक संकट, सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक व्ववस्था की पीड़ा की झलक मिलती है । मीरा की एकनिष्ठ कृष्ण-भक्ति का वितान छोटा है फिर भी उसमें संयोग-वियोग, सगुण-निर्गुण, गृहस्थ-सन्यास आदि सभी बातों का समावेश है । 'गले राम की जेवड़ी', सूर हरि को चरन आयौ, राखी ले भगवान, 'रामहि केवल प्रेम पियारा' में क्रमशः कबीर, सूर, तुलसी की अनन्यता का भाव मीरा के 'मेरे तो गिरधर गोपाल दूसरो न कोई' में बड़ी मार्मिकता से व्यक्त हुआ है । उस समय के भक्तों, संतों और सूफियों ने व्यक्तिगत एवं सामाजिक जीवन में अनेक कष्टों को सहा । सत्य, ईमानदारी, आचरण की शुद्धता, भक्ति भाव आदि के सहारे इन्होंने सारे विरोधों का डटकर मुकाबला किया लेकिन मध्यकाल की सामंती व्यवस्था के विरोध में कोई राजनीतिक-सामाजिक संगठन नहीं बना पाए । जहाँ कबीर ने पाण्डे और मुल्ला के संबोधन से सामाजिक व्यवस्था पर चोट की वहाँ पर मीरा ने राणा के बार-बार सम्बोधन से सामंती व्यवस्था की जटिलता और क्रूरता पर प्रहार किया और नारी मुक्ति की छट-पटाहट को स्वर दिया । मीरा ने उस व्यवस्था और परंपरा की चहारदीवारी को तोड़कर साधुओं के बीच 'मैं तो प्रेम दीवानी मेरो दरद न जाने कोय' गाकर सुखकी अनुभूति की ।

मैं गिरधर के घर जाऊँ ।
गिरधर म्हारों सांचो प्रीतम, देखन रूप लुभाऊँ ।
रैण पडै तब ही उठि जाऊँ, भोर गये उठि आऊँ।
रैणदिना वाके संग खेलूं, ज्यूं त्यूं वाहि लुभाऊँ ।

दरअसल मीरा की पीड़ा जायज थी क्योंकि उस समय के मध्य वर्गीय परिवार में नई बहू के लिए अनेक तरह की वर्जनाएँ होती थीं । ऐसे रहना है, ऐसे चलना है, ऐसे बोलना है । जहाँ पर अधिकांश घरों में सास बहू की चौकीदारी करती थीं तो ननद अंगरक्षक की भूमिका निभाती थी । दहेज एवं अन्य कारणों से बहू-को सताने के संदर्भ में सास, ननद और देवर की मिलीभगत की बातें आज भी सुनने को मिलती हैं । मीरा के सिर से माता-पिता, पति, ससुर आदि की छाया जल्दी उठ जाने के कारण उनको पारिवारिक संकट का सामना करना पड़ा । वैसे गिरधर के प्रति उनके मन में, अनुराग का बीज बचपन में ही मायके में पड़ गया था । उस समय की राजनीतिक और पारिवारिक आपदाओं के कारण उसे पुष्पित और पल्लवित होने का सुअवसर मिल गया । उनके पति राजा भोज जिंदा होते तो उनकी गिरधर के प्रति भक्ति का स्वरूप कुछ अलग होता । पति वियोग के दुःख से मीरा की भक्ति और धारदार हो गई । सास, ननद, और समाज के तानों से टूटकर वे अपने सांवरिया की हो गईं और सारी लोकलाज भूलकर गिरधर के रंग में रंग गईं ।

म्हां गिरधर रंग राती ।
पचरंग चोळा पेहरया सखी म्हां, झरमट खेलण जाती ।
वा झरमट मां मिळयो सांवरो, देख्यां तन मन राती।
जिणरो पिया परदेस बसै री, लिख लिख भेजै पाती ।
म्हारा पिया म्हारे हिवडे बसतां, ना आवां ना जाती ।
मरा रे प्रभु गिरधर नागर, जोवां दिन राती ॥

भक्ति काल के अन्य कवियों की भांति मीरा ने लोक जीवन के सांस्कृतिक उपादानों के माध्यम से अपनी अनुभूति को उन्हीं की भाषा में व्यक्त किया । दरअसल उनकी अनुभूति में उन जैसा सबका दर्द छिपा था, इसलिए जनता ने उसका स्वागत किया जिसकी फलश्रुति यह है कि आज भी उनकी रचनाओं की जीवन्तता बनी हुई है । विश्वनाथ त्रिपाठी ने लिखा है ''मीरा की कविता का परिवेश सीमित और व्यक्तिगत है । लेकिन वह इस व्यक्तिगत और सीमित परिवेश को तोड़कर

बाहर आना चाहती है, बाहर आने से रोकी जाती है- बाहर न आ पाने की व्यथा का वर्णन चित्रण करती हैं तो परिवेश अपनी विषमता से युक्त बाह्य समाज का भी संकेत कर देता है ।'' उत्तर भारत में उस समय ही नहीं बल्कि आज भी परिवार और परंपरा की संस्कृति को न मानने वाले को अच्छी निगाह से नहीं देखा जाता। वे जगत के निर्मम व्यवहार से दुःखी होकर रोती-फिरती और फिर अपने गिरधर से अनुनय-विनय करती हुई कहती -

म्हाने चाकर राखो जी, गिरधारी लाला चाकर राखो जी।
चाकर रहस्यूं बाग उगास्यूं, नित उठ दरसण पास्यूं।
बिन्द्रावण री कुंज गैल में, गोविद लीला गास्यूं।
चाकरी में दरसण पास्यूं, सुमरण पास्यूं खरची ।

मीरी निर्गुण-सगुण धारा के पचड़े में नहीं पड़ी । ''तुम बिच हम बिच अन्तर नाहीं जैसे सूरज घामा'' कहकर उन्होंने दोनों के भेदभाव को समाप्त कर दिया । वे अपने प्रभु को गिरधर, नारायण, दीनानाथ, कृपानिधान, नंदनन्दन, बलबीर आदि पता नहीं कबीर की तरह कितने नामों से पुकारा । अपने प्रभु के प्रेम में दीवानी मीरा को लोगों ने 'मदमाती', 'कुलनासी' और 'वावरी' कहा जिसका-उल्लेख उन्होंने कई पदों में किया है । कबीर ने जैसे राम को काम से जोड़ा वैसे मीरा की दीवानगी को भी काम से जोड़कर देखा जाना चाहिए । वैसे मीरा लोक जीवन में एकनिष्ठता की प्रतीक तो बन ही गई है । उनकी जैसी प्रेमविह्वलता का रूप भी कम देखने को मिलता है । वे अपने प्रभु के बाल-सौन्दर्य पर मुग्ध होकर उन्हें अपने नेत्रों में बसा लेना चाहती हैं।

बसो मोरे नैनन में नंदलाल ।
मोहन मूरति, सांवरी सूरति, नैना बने विसाल ।
अधर सुधा रस मुरली राजति, उर बैजंती माल ।
छुद्र घंटिका कटि तट सओहति, नूपुर सबद रसाल।
मीरा प्रभु संतन सुख दाई, भगत बछल गोपाल ।

मीरा जहाँ अपने प्रभु के बाल-सौन्दर्य पर रीझती है वहीं उनके युवा रूप पर मुग्ध होकर उन्हें पति रूप में प्राप्त कर संयोग का सुख और न प्राप्त होने पर वियोग का दुःख प्रकट करती हैं । जहाँ कबीर नयनों की करि कोठरी, पुतरी पलंग बिछाय, पलकों की चिक डारि के, पीव को लेहुँ रिझाय, कहकर अपने राम भरतार के प्रति नई नवेली बहुरिया का भाव व्यक्त करते हैं और गोपिकाएँ मनो गोपाल आए मेरे घर, हंसि करि भुजा गही । कहा करौं बैरिनि भइ निंदिया, निमिष न और रही कहकर स्वप्न में संयोग-शृंगार की अनुभूति करती हैं, वहीं मीरा भी अपने सांवलियां के लिए तड़पड़ाती है -

माई मेरा पिया बिन अलूणो देस ।
राग-रंग सिणगार न भावै, खुलि रहे सिर के केस॥
सावण आया साहिब दूरे, जाइ रहे परदेस ।
सेज अलूणी भवन अकेली, रैण भयंकर भेस ॥
आव सलूणी भवन अकेली, रैण भयंकर भेस ।
आव सलूणे प्रीतम प्यारे, बीते जीवन बेस ।
मीरा के प्रभु हरि अविनासी, तन मन करुं सब पेस ॥

परशुराम चतुर्वेदी ने लिखा है कि ''सूरदास एवं तुलसीदास जैसे भक्त कवियों ने जहाँ अपने प्रभु के प्रति दैन्य प्रकाशन करके उसकी कृपा-दृष्टि प्राप्त करने की चेष्टा की है तथा संत कवि कबीर ने जहाँ अपने राम के समक्ष उसकी 'बहुरिया' बनकर अपनापन सिद्ध करने का यत्न किया है, वहाँ मीराबाई अपने गिरधर लाल द्वारा स्वयं वरण कर ली गई पत्नी के रूप में आत्मोदगार प्रकट करती हैं और उनके पदों में काव्य-तत्व एवं संगीतात्मकता का पूर्ण सामंजस्य भी आ जाता है ।'' जहाँ सूर 'प्रभु मुझ पतितन सौं टीकौ, और

पतित तो दिवस चार को, हौं जनमत को हीकौं' और 'तुलसी' मैं हरि पतित पावन सुने । मैं पतित, तुम पतित पावन, दोउ बनकर बने कहकर अपने प्रभु के समक्ष दीनता का भाव प्रकट करते हैं वहीं पर मीरा भी चाहे जो भी रास्ता अख्तियार करना पड़े अपने नागर से मिलना चाहती हैं । वे अपने प्रभु की प्राप्त करने के लिए सिद्ध, नाथ, सूफी, वैष्णव आदि किसी भी मत से परहेज नहीं करती । उनका लक्ष्य है सांवरिया से मिलन।

परिवार और समाज से त्याज्य मीरा के जीवनाधार उनके गिरधर हैं । मीरा का दरद कोई नहीं समझता । यह तो एक ऐसा दरद है जो भोगता है वही जानता है अन्याथा तो लोग हंसी उड़ाते हैं । मीरा का दुःख एक अबला का हैं जिसमें मार्मिकता और समर्पण का भाव है । मीरा ने सुन रखा है कि उनके प्रभु ने द्रौपदी, अहल्या, शबरी, गणिका आदि को तारा है तो मेरा भी कल्याण अवश्य करेंगे । भक्ति आंदोलन ने भगवान का जो रूप खींचा था वह दीनबंधु और करुणाकातर का था । मीरा भी भगवान के उसी स्वरूप का वर्णन कर अपने जैसे अन्य पीड़ितोंका दुःख हरना चाहती हैं।

म्हां सुण्या हरि अधम उधारण,
अधम उधारण भव भय तारण ।
गज बूडतां अरज सुण धाया, भगतां कष्ट निवारण।
द्रुपद सुता रो चीर बढायो, दुहसासण मद मारण ।
प्रहल्लाद परतग्या राखी, हिरणाकुस रो उदर विदारण ।
मीरा रे प्रभ-अरजी म्हारी, अब अबेर कुण कारण॥

भक्ति आंदोलन के मूल में शूद्र महिला आंदाल और पुरुष शठकोप का होना इस बात का द्योतक है कि यह आंदोलन वर्णव्यवस्था और नारी-पुरुष के भेदभाव को तोड़ने वाला था । सामंती राजघराने से संबंध रखने वाली मीरा ने सारे सामाजिक बंधनों को तोड़कर 'जाति-पांति पूछै नहि कोइ, हरि को भजै सो हरि का होई' के रास्ते पर चलकर रामानंद के आदर्श को स्वीकार किया। जुलाहा कबीर, नाई सेना, जाट धन्ना, चमार रैदास आदि संप्रदायों के बीच मीरा उन्मुक्त भाव से भजन गाती थी ।

मीरा ने राजस्थान की पथरीली वीरभूमि में भक्ति की गंगा प्रवाहित की, लेकिन उस समय की सामंती-व्यवस्था एवं समाज ने उन्हें महत्व नहीं दिया । वे अपनों से पराई होकर ब्रज, मथुरा, द्वारिका आदि स्थानों पर घूमती रही । उन्होंने अपने प्रभु का गुणगान, राजस्थानी, ब्रजभाषा और गुजराती में किया जिसे ठीक ढंग से लिपिबद्ध नहीं किया गया । उनके भक्तों ने उसे तोड़-मरोड़ कर प्रस्तुत किया । इसलिए बहुत सारे पदों को लेकर भ्रांतियाँ बनी हुई हैं । दरअसल मीरा के पद लोकजीवन में उनके भक्तों द्वारा लिखे गए क्योंकि राजस्थान की सामंतवादी व्यवस्था उनका विरोध करती थी । मीरा भक्तों के साथ यहाँ-वहाँ भ्रमण करती रहती थी इसलिए उनके बहुत सारे पद विचार, भाव और भाषा की दृष्टि से कबीर, सूर एवं अन्य संत कवियों से मिलते-जुलते हैं ।

चण्डीदास, विद्यापति, महाप्रभु चैतन्य, सूरदास एवं अष्टछाप के कवियों आदि ने विभिन्न सम्प्रदाओं के माध्यम से राधा-कृष्ण का अन्यान्य भावों, कल्पनाओं और अनुभूतियों से गुणगान किया । लेकिन मीरा की उन्मुख आत्मा ने कभी भी किसी बन्धन को स्वीकार नहीं किया । वे सहज भाव से अपने प्रभु का गुणगान करती रही । लोकजीवन में अन्य भक्त कवियों की भांति मीरा के पद भी कृष्ण-भक्तों के लिए आजीविका के साधन बने । भगवानदास तिवारी का कहना है - ''राधा और गोपियों की मधुर-भावनाओं के ज्ञापन में इन राधाकृष्णोपासकों ने कल्पना का सहारा लिया है, जबकि मीरा की मधुराभक्ति स्वानुभव और निजानुभूति

पर आधारित है । भक्ति, काव्य, संगीत का समन्वय प्रायः सभी कृष्णोपासक भक्तों की रचनाओं में है, मीरा-पदावली में भी है, किंतु मीरा के पदों की आत्मीयता उनकी अपनी विशेषता है ।'' वस्तुतः मीरा की भक्ति में एक संघर्षशील नारी के निष्कपट भाव की अभिव्यक्ति छिपी है । मीरा की भक्ति भावना की अपनी खास बनावट है जिसे कि उन्होंने स्वयं गढा है । यह सही है कि उसमें परंपरागत विचारों, भावों, उपमानों, रुढ़ियों आदि के बीज विद्यमान हैं । घनानंद के शब्दों में कहें तो 'लोग हैं लागि कविता बनावत, मोहि तो मोरे कवित्त बनावत' की भांति मीरा की भक्ति उनकी अपनी निजी देन है जोकि स्वानुभूति की आंच से पक कर तैयार हुई है ।